THE TIMES OF INDIA

Date: 29-08-17

# Unfinished business

## *Formalise a new MoP that ensures greater transparency in judicial appointments*

**TOI Editorials**

The disagreements between former Chief Justice of India JS Khehar and Justice J Chelameswar on the Supreme Court collegium's functioning are a direct outcome of the failure to finalise the Memorandum of Procedure (MoP) for appointment of judges. New CJI Dipak Misra must thus contend with internal dissension on collegium functioning besides disagreements with Union government on MoP provisions, which will arguably give the executive greater leeway in rejecting collegium proposals. Justice Chelameswar, a collegium member, had alleged that collegium meetings were conducted "casually" and had demanded that members should record their observations in writing.His views cannot be ignored because the Constitutional Bench that quashed the National Judicial Appointments Commission Act was unanimous in proposing a new MoP that would introduce transparency in appointment process, a secretariat to manage judicial appointments, and a mechanism to address complaints against those considered for appointment. This was an implicit admission that collegium system needed reform. Unfortunately, the MoP has been stuck for over 20 months with the government and successive CJIs disagreeing on key provisions.An independent judiciary is non-negotiable but selection of judges from the widest possible pool with appropriate scrutiny mechanisms will only strengthen judicial autonomy. The MoP is no replacement for the NJAC Act but is the best possible avenue left to ensure that collegium deliberations follow standards of transparency that SC demands of other public bodies. There are six SC judgeship vacancies to fill this year. 24 high courts are presently functioning with 672 judges against 407 vacancies. This is unacceptable. CJI Misra has his task cut out. The solution is not to ignore dissenting voices but to subject the collegium to rules that stand the test of natural justice. Both judiciary and executive must shed mutual suspicions and quickly formalise the MoP.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

***Date: 29-08-17***

# डोकलाम में शांति

***संपादकीय***

विदेश मंत्रालय ने सोमवार को कहा कि भारतीय और चीनी सैनिक सिक्किम के निकट डोकलाम क्षेत्र से हट रहे हैं। चीन के विदेश मंत्रालय ने कहा कि हालांकि क्षेत्र में उसकी सेना की गश्त जारी रहेगी लेकिन जरूरी बदलावों के हिसाब से समायोजन और तैनाती आदि की जाएगी। आशा है कि पिछले कई सप्ताह से चला आ रहा संकट समाप्त हो जाएगा। संकट की शुरुआत तब हुई थी जब चीन ने विवादित इलाके में सड़क निर्माण का काम शुरू किया था। इसकी वजह से भारतीय सैनिकों को वास्तव में दखल देकर यह काम रुकवाना पड़ा था। इसके बाद गतिरोध पैदा हो गया और भारतीय तथा चीनी सैनिक एक दूसरे से कुछ मीटर की दूरी पर तैनात रहे। इस बीच चीन के सरकारी मीडिया ने अंध राष्ट्रवाद पैदा करने की पूरी कोशिश की। इसके लिए समय उचित नहीं था क्योंकि चीन के राष्ट्रपति पार्टी सदस्यों की कांग्रेस से मुखातिब थे। इस कांग्रेस में ही उनके सत्ता में आगे भी बने रहने की पुष्टि हुई। ऐसे में सार्वजनिक रूप से कुछ भी ऐसा कहने की गुंजाइश नहीं थी जिससे कमतरी का अहसास हो। ऐसे में अगर कूटनीति कारगर साबित हुई तो यह बहुत राहत की बात है क्योंकि फौरी संघर्ष से निजात मिल गई है। दोनों पक्षों ने एक दूसरे को क्या दिया इसका गणित छोड़ दिया जाए तो यह संवाद की जीत है। आंखों में आंखें डालकर एक दूसरे का मुकाबला करने के बजाय दोनों देशों ने यह सुनिश्चित किया है कि पुराना रिकॉर्ड बरकरार रहे। पुराना रिकॉर्ड यह कहता है कि बीते एक दशक में दोनों देशों ने सीमा पर गुस्से में आकर कभी गोलीबारी नहीं की। इसमें कोई दो राय नहीं है कि जो कुछ हुआ, वह कैसे हुआ इस बारे में समुचित जानकारी पाने में अभी वक्त लगेगा। चीन की सड़क निर्माण योजना का क्या हुआ इस बारे में कोई आधिकारिक जानकारी नहीं है। हालांकि ऐसी अटकलें लगाई जा रही हैं कि सड़क परियोजना का काम बंद होगा और चीन भूटान के साथ कूटनयिक संबंध कायम करेगा। ऐसे में सामरिक महत्त्व के इस क्षेत्र में चीन की गतिविधियों पर एक नजर रखना आवश्यक है।

आगे की बात करें तो कई ऐसे सबक हैं जो इस दुर्भाग्यपूर्ण घटनाक्रम से सीखे जा सकते हैं। ऐसा दोबारा नहीं होना चाहिए, ऐसे मसलों से निपटने के लिए एक संस्थागत तरीका तलाश किया जाना चाहिए। चीन सरकार का दावा है कि उसने भारत को सड़क निर्माण परियोजना के बारे में अग्रिम जानकारी दे दी थी। हमें देखना होगा कि क्या वास्तव में ऐसा था? अगर हां तो जरूरी कदम क्यों नहीं उठाए गए या चर्चा क्यों नहीं की गई? ऐसी कमियों को दूर करना होगा तभी एक व्यवस्थित ढांचा विकसित किया जा सकेगा। दो परिपक्व देश जो परमाणु क्षमता संपन्न हैं और जिनका कद काफी बड़ा है, उनको सीमा पर यूं तनातनी शोभा नहीं देती। इस व्यवस्था के अलावा भूटान के साथ अपने रिश्तों पर भी ध्यान देना होगा। आखिरकार, जिस जमीन को लेकर विवाद है वह विवाद चीन और भूटान का है। इस

मामले में भूटान की शाही सेना के बजाय भारतीय सेना ने दखल दिया क्योंकि दोनों देशों के बीच ऐतिहासिक रिश्ते हैं। परंतु भविष्य में ऐसे किसी भी कदम को मजबूत कानूनी आधार प्रदान करना होगा ताकि चीन किसी तरह का दुष्प्रचार करने में कामयाब न हो सके। भारत को आगे बढ़कर भूटान से रिश्ते और प्रगाढ़ बनाने चाहिए क्योंकि शायद इस प्रकरण से कुछ भ्रम हुआ हो। परंतु तात्कालिक प्रतिक्रिया तो राहत की ही होनी चाहिए। यह अच्छी बात है कि चीन के साथ विवाद और आगे नहीं बढ़ा।

---

दैनिक भास्कर

***Date: 29-08-17***

# रोजगार के बड़े इंजन लगाना चाहता है नीति आयोग

**Bhaskar Editorial**

पिछले हफ्तेजारी नीति आयोग की तीन साल की कार्ययोजना में बेरोजगारी से ज्यादा अर्द्धबेरोजगारी को चिंता का विषय बताकर विकास का नया मुहावरा पेश किया गया है। इस मुहावरे की सफलता तो नई नीति के क्रियान्वयन पर निर्भर करेगी लेकिन, रोचक यह है कि इसमें यूरोप-अमेरिका की जगह चीन, ताइवान, दक्षिण कोरिया और सिंगापुर जैसे एशियाई देशों के मॉडल को अनुकरणीय बताया गया है।सरकार के इस नए विचार केंद्र को विपक्षी दलों और उसके विचारकों का यह जुमला बेकार लगता है कि मौजूदा अर्थव्यवस्था में रोजगारहीन वृद्धि हो रही है। इसके जवाब में नीति आयोग का कहना है कि राष्ट्रीय साख्यिकी संगठन तो लंबे समय से बेरोजगारी की दर को 3.4 प्रतिशत के निम्न स्तर पर स्थिर मान रही है। अगर इस साल बेरोजगारी वृद्धि दर में मामूली फर्क आएगा तो अगले साल भी यह 1.8 करोड़ तक ही जाने वाली है। आयोग इसे लेकर अपनी नींद हराम नहीं कर रहा है बल्कि वह इस बात से बेचैन है कि एक व्यक्ति का काम चार-चार लोग कर रहे हैं और उससे उत्पादकता घट रही है। आयोग मानता है कि इसका इलाज वस्तुओं का आयात नहीं, बल्कि इस बात में है कि हम मेक इन इंडिया पर नए रूप में जोर दें और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आमंत्रित करके उन्हें तटवर्ती आर्थिक क्षेत्र में सक्रिय करें। इस सक्रियता से स्थानीय माहौल भी सुधरेगा और छोटी और मझोले स्तर की देशी कंपनियों में वृद्धि होगी।आयोग को उम्मीद है कि चीन जैसे देशों में बुजुर्ग आबादी बढ़ने के साथ वहां की कंपनियां सस्ते श्रम की तलाश में दूसरे देशों की ओर पलायन कर रही हैं और भारत इनका लाभ उठाकर अच्छे वेतन वाली नौकरियां भी पैदा कर सकता है और उत्पादकता भी बढ़ा सकता है। संभव है आयोग का यह नया मुहावरा उत्पादकता और रोजगार बढ़ाए और कुछ हाई प्रोफाइल नौकरियां भी पैदा करे। उनसे उत्पादकता के क्षेत्र में बेहतरीन प्रतिभाओं का आगमन हो जो तकनीकी पक्षों के अलावा प्रबंधकीय कौशल में भी दक्ष होंगी। इसके बावजूद भारत सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि देश में कानून व्यवस्था बेहतर हो और व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा का स्वस्थ माहौल बने। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि देश के किसी हिस्से में होने वाली अशांति राष्ट्रीय ही नहीं अंतरराष्ट्रीय माहौल पर भी असर डालती है। सरकार को यह भी देखना होगा कि बड़ी नौकरियों से पैदा होने वाली असमानता का क्या समाधान किया जाए।

---

नईदुनिया

Date: 29-08-17

# सबको वित्तीय मुख्यधारा में लाएंगे हम

*अरुण जेटली*

तीन साल पूर्व 28 अगस्त को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने प्रधानमंत्री जन-धन योजना के रूप में अपने एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम का आगाज किया था। इस योजना का मकसद देश के गरीबों तक बैंकिंग सुविधाएं पहुंचाना था, ताकि अब तक इनसे महरूम रहा तबका भी इनका लाभ उठा सके। आजादी के इतने वर्षों बाद भी देश की आबादी के एक बड़े हिस्से तक इन सेवाओं का न पहुंच पाना तमाम सवाल खड़े करता था। इतने बड़े तबके को बैंकिंग तंत्र से जोड़ना कोई आसान काम नहीं था, लेकिन सरकार इस चुनौती को स्वीकार करते हुए इस मुहिम में पूरी मुस्तैदी से जुट गई। इस योजना में न सिर्फ गरीबों के बैंक खाते खुलवाए गए, बल्कि रुपे कार्ड के जरिए उन्हें इलेक्ट्रॉनिक भुगतान का माध्यम भी उपलब्ध कराया गया, ताकि वे इस स्थिति में भी आ जाएं कि बैंक उन्हें कर्ज देने के लिए उनके प्रस्ताव पर विचार कर सकें। यह भी सुनिश्चित किया गया कि उन्हें बीमा योजनाओं का भी लाभ मिल सके। स्वाभाविक रूप से इसके पीछे एक दूरगामी सोच थी, जिसका दायरा बहुत व्यापक है। इसके माध्यम से देश के उन गरीबों का वित्तीय समावेशन कर उन्हें उस आर्थिक, डिजिटल और सामाजिक दायरे में लाना था, जिससे वे अभी तक पीछे छूटे हुए थे। इससे देश के गरीब लोग न केवल आर्थिक विपन्नता के दुष्चक्र से बाहर निकल आएंगे, बल्कि सामाजिक मुख्यधारा का अटूट अंग भी बन जाएंगे। अब जब इस सफर पर तीन साल बीत गए हैं, तो तमाम मोर्चों पर कई उल्लेखनीय उपलब्धियां भी हासिल हुई हैं।सबसे बड़ी सफलता तो बैंक खातों के मामले में मिली है। जनवरी 2015 में 12.55 करोड़ जन-धन खातों का आंकड़ा 16 अगस्त, 2017 तक बढ़कर 29.52 करोड़ हो गया। इसमें भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रदर्शन बेहद सराहनीय रहा। जनवरी, 2015 में ग्रामीण क्षेत्र में जहां 7.54 करोड़ जन-धन खाते खोले गए थे, वहीं 16 अगस्त, 2017 तक उनकी संख्या बढ़कर 17.64 करोड़ हो गई। यही बात रुपे कार्ड पर भी लागू होती है। जनवरी 2015 में जारी 11.08 करोड़ रुपे कार्डों की संख्या 16 अगस्त, 2017 तक बढ़कर 22.71 करोड़ हो गई। लाभार्थियों के खाते की राशि भी बढ़कर 65,844.68 करोड़ रुपए हो गई और प्रति खाता औसत शेष राशि का आंकड़ा भी जनवरी 2015 के 837 रुपए से उछलकर अगस्त, 2017 में 2,231 रुपए हो गया। दूसरी ओर जीरो बैलेंस खातों की संख्या में खासी कमी देखने को मिली है। सितंबर, 2014 में जहां 76.91 फीसदी ऐसे खाते थे, तो अगस्त 2017 में उनका दायरा सिमटकर 21.41 फीसदी रह गया। महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण में भी इसने अहम भूमिका निभाई है। आंकड़े खुद इसकी तस्दीक करते हैं। मार्च, 2014 तक कुल बचत खातों में 33.69 करोड़ खातों के साथ महिलाओं की 28 फीसदी हिस्सेदारी थी। देश के शीर्ष 40 बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों यानी आरआरबी के आंकड़ों के अनुसार इसमें महिलाओं की हिस्सेदारी बढ़कर तकरीबन 40 प्रतिशत हो गई है। महिलाओं के कुल 43.65 करोड़ खातों में से 14.49 करोड़ खाते जन-धन योजना से जुड़े हैं। वित्तीय समावेशन में यह महिलाओं की बड़े पैमाने पर हिस्सेदारी की कहानी बयां करता है।

वित्तीय समावेशन के अलावा सरकार ने प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना यानी पीएमजेजेबीवाई और प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना यानी पीएमएसबीवाई के जरिये गरीबों को सुरक्षा आधार मुहैया कराने की मुहिम भी शुरू की है। 7 अगस्त, 2017 तक पीएमजेजेबीवाई के तहत 3.36 और पीएमएसबीवाई के तहत 10.96 करोड़ नामांकन हो चुके हैं। इन दोनों ही योजनाओं में 40 फीसदी से ज्यादा नामांकन महिलाओं के हैं।प्रधानमंत्री जन-धन योजना से बने समूचे तंत्र की बदौलत मुद्रा योजना जैसे कार्यक्रमों को सिरे चढ़ाने

में मदद मिली है। 18 अगस्त, 2017 तक इसमें 8.77 करोड़ लाभार्थियों के खातों में 3.66 लाख करोड़ रुपए की रकम हस्तांतरित की गई। यह पूरी की पूरी राशि उनके बैंक खातों में ही गई है। इसके जरिए देश में युवा उद्यमियों की एक नई पौध पनप रही है, जिसे समुचित संसाधन मुहैया कराकर पुष्पित-पल्लवित किया जा रहा है। प्रधानमंत्री जन-धन और अन्य योजनाएं असल में एक बड़ी यात्रा का पहला पड़ाव ही थीं, क्योंकि उन्होंने जैम यानी जनधन-आधार-मोबाइल की तिकड़ी वाली क्रांति का सूत्रपात किया। जैम या यूं कहें कि यह भविष्य को ध्यान में रखकर गढ़ा गया नजरिया असल में हमारे मुख्य आर्थिक सलाहकार की देन है। यह किसी सामाजिक क्रांति से कम नहीं है, क्योंकि इसमें जन-धन के रूप में वित्तीय समावेशन, बायोमीट्रिक पहचान वाले आधार और मोबाइल संचार की त्रिवेणी का अनूठा संगम होता है। देश में आज 52.4 करोड़ आधार 73.62 करोड़ बैंक खातों से संबद्ध हैं। इसका ही नतीजा है कि आज गरीब लोग भी इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से भुगतान करने में सक्षम हैं। आधार पहचान के जरिए अब गरीबों द्वारा हर महीने लगभग सात करोड़ सफल भुगतान हो रहे हैं। इन सबसे भी बढ़कर सरकार अब 35 करोड़ लाभार्थियों के खाते में सालाना 74,000 करोड़ रुपए की राशि प्रत्यक्ष अंतरण के तौर पर डाल रही है। इस लिहाज से देखा जाए तो हर महीने 6,000 करोड़ रुपए से अधिक की राशि इन खातों में हस्तांतरित की जा रही है। यह हस्तांतरण पहल, मनरेगा, वृद्धावस्था पेंशन, छात्रवृत्ति जैसी तमाम गरीब हितैषी और जनकल्याण से जुड़ी योजनाओं के मद में हो रहा है।अब भीम एप और यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस यानी यूपीआई के साथ जैम पूरी तरह अमल में लाया जा सकता है। एक बेहद आसान भुगतान विकल्प ढांचा तैयार किया गया है ताकि सभी भारतीय खासकर गरीब लोग भी डिजिटल मुख्यधारा का हिस्सा बन सकें। जैम सामाजिक क्रांति से सरकार, अर्थव्यवस्था और विशेषकर गरीबों के लिए तमाम अहम फायदे सामने आ रहे हैं। जहां वित्तीय सेवाएं गरीबों की जद में आ रही हैं तो जीवन में होने वाली दुर्घटनाओं से बचाव के लिए बंदोबस्त भी किया गया है। सबसिडी का बोझ कम होने से सरकारी खजाने की हालत भी सुधरेगी और साथ ही सुपात्रों तक तेजी से लाभ पहुंचाने में मदद मिलेगी, जिसमें गड़बड़ी की आशंकाएं भी घटती जाएंगी।फिलहाल 'एक अरब-एक अरब-एक अरब" का महत्वाकांक्षी लक्ष्य पहुंच में नजर आ रहा है। इसमें एक अरब आधार को एक अरब बैंक खातों और एक अरब मोबाइल फोन से जोड़ने की बात है। जब यह पूरी तरह आकार ले लेगा, तो समूचा भारत वित्तीय और डिजिटल मुख्यधारा का हिस्सा बन जाएगा। जिस तरह वस्तु एवं सेवा कर यानी जीएसटी ने एक कर-एक बाजार-एक देश की संकल्पना को साकार किया, उसी तरह जन-धन योजना और जैम क्रांति सभी भारतीयों को एक साझा वित्तीय, आर्थिक और डिजिटल सूत्र में पिरो सकती है। कोई भी भारतीय मुख्यधारा से बाहर नहीं होगा। यह किसी बड़ी सामाजिक क्रांति से कम नहीं।

---

THE HINDU

***Date: 28-08-17***

# The lure of the dera

## *The sect caters to the diversity of livelihoods in a way social workers cannot match*

***Shiv Visvanathan***

The Dera Sacha Sauda sect headed by Gurmeet Ram Rahim Singh is a fascinating phenomenon which cannot be analysed through the standard upper middle-class lens that dismisses it as a criminal or law and order problem.The Dera is a mirror to middle-class fantasies, a mirror which captures modernity by caricaturing and distorting it. A part of it is seen in Singh himself. His name embodies an idea of equality,

the equality of all religions which goes beyond any secular ideology. Secular ideologies are often dry today, while the Dera search has a stamp of fantasy, a yen for the latest technology. In fact, the symbolic power of technology is in desire fulfilment, and Singh's group captures it. However, Singh wishes to say technology does not make you a robot, but a prophet, a superhero, a genius ready to help humanity.

### *The dream of equality*

Listen to his song, 'Love Charger'. There is a poignant mediocrity to his performance. Bhakti and karaoke combine in good measure as he sings an ode to the Satguru. In English, the mysticism disappears and rap and pop sneak up on you as laughable, watered-down mysticisms. The text is repetitive. You condemn it, but your body dances to it and you find yourself mumbling the lyrics. It is a song every student of mine hums, a karaoke song to god and guru exclaiming a faith where "any moment, any problem, in heart call you."It could be dismissed as being ludicrous but the ludicrous sometimes captures our dreams more fully. The dream of equality can go back to the Bhakti movement, or it can summon the French Revolution. One thing is clear: democracy and modernisation have not delivered equality. The lower castes, the Other Backward Classes needed an imagination beyond the aridity of socialism and Marxism, the promises of equality that offer little. In the drudgery of routine made more meaningless by modernity, the pidgin of faith that Singh espouses makes sense, provides a sense of communitas, welcoming the poor and the discarded in a way that ideology cannot. English middle-class snobbishness dismisses the sect as mediocre, as a law and order problem. But fantasy and faith go together to create a circus of desire where quackery and belief can co-exist. This needs to be understood. Few will wonder how these Satsangs pervade lower middle-class life and provide a poetics to small-town life. Here one can erect a dream of success, a millennial faith in technological happiness, where Singh revs up a sense of anticipation.Perusing a list of Dera Sacha Sauda ashrams in India, one can see them as terrains of social service or as personal enclaves full of sexual kinkiness, most probably a combination of both. These groups are large, and States like Haryana, Bihar, Punjab and Rajasthan are fertile grounds for people who dream of a millennial equality, where good and evil combine. Do our progressives ever ask why this man thinks of the actual lives of widows and sex workers, while our ideologues talk of abstract equality? Here, governance and empathy work for marginal groups which are accepted without condemnation. Agreed, the roots of exploitation might also be seeded here, but how do you separate, judge, and provide the report cards?Imagine doing a human indicators study of these ashrams, comparing them with enclaves where the government has conducted its welfare projects. If these groups are evaluated on the ideas of community, solidarity and well-being, they will probably receive a better rating. So, is the secular the only idiom of justice or are there other vernaculars? Do we dismiss the faith of these people on their guru as another ridiculous Ganesh phenomenon?It is true that the relation between these groups and electoral politics is a bit seedy. The size of the following makes politicians see them as vote banks, pamper them with real estate, turn a blind eye to the little exploitations and the sheer defiance of the government that must be going on in these enclaves. Politicians love to be invited as VIPs to these enclaves where spectacles are created which can boost their egos. Complicity and conviviality between these groups is witnessed as each fine-tunes the other in their joint march to power and history.

### *Grey areas*

The challenge today is, how do we look at the aspirations of people without treating them with contempt, without orientalising them, as many in the West do when they imagine India as a land of gurus without sensing that some of these groups have the same ardour and faith that fundamentalism abroad is displaying? How do we separate the different Gurmeet Ram Rahim Singhs: the reformer, the devotee, the fraud, the rapist? How does a culture look at such a man without falling between a lazy secularism and a

multi-coloured fundamentalism?As citizen social scientists today, we have to go beyond the knee-jerk celebrations and dismissals. The demographic emergence of millennial ashrams is a source of concern and curiosity. How do these ashrams, which deal with small-town meaning and modernity, appear and become global phenomena? How do they acquire so much freedom so as to become parallel communities which challenge the official? How long have they been beyond the scrutiny of law and order forces? How could so many of them assemble arsenal? It is almost as though these ashrams are enclaves of secession, of groups which have diffused their life and lifestyles as different from the mainstream. The sense is that unlike Sadhguru or Sai Baba, these groups do not need to associate with government; they have the confidence and culture to challenge it on the streets.The old notion of civil society of the secular NGO, the idea of public does not quite fit our democracies today. Our biggest NGOs are religious groups, which are often little multinationals in terms of the power they wield. Dismissing these groups as bad faith will not do. People and even the government realise that at moments of disaster these groups have the power and commitment to be among the best disaster-managers. Their work ethic and their religiosity create a network of competence that the state and secular humanitarians cannot match. They read the classifications of marginal beyond standard categories and cater to the diversity of livelihoods in a way social workers cannot match. Their ideology is a bricolage of Bhakti, technology, spirituality and social science, the very idioms in which many of us speak. These groups provide a mirror to an alternative future which our secular Constitution has no sense of. We have two options: dismiss Ram Rahim Singh as a law and order problem or go out and understand what is happening to our culture today under the stress of modernity and globalisation. The proliferation of goddesses, the epidemic of gurus, and the appeal of millennialism reveals that India is a mix of secularism, faith, and superstition that has an experimental pluralist quality to it. It demands that we step out of our drawing-room ideas of governance and social science and get a vernacular sense of what India is thinking beyond the realm of consumption and marketing today.

---

***Date: 28-08-17***

# That old spark

***The Nepal Prime Minister's visit sparks hope that bilateral ties will find a new equilibrium***

At a time when the Doklam stand-off had focussed attention on Himalayan geopolitics, it was impossible to miss the significance of the visit of Nepal's Prime Minister Sher Bahadur Deuba to India. This was his first foreign visit as Prime Minister, and it confirmed Kathmandu's abiding interest in strong ties with India. The recovery of bilateral warmth has taken some doing on both sides. Mr. Deuba is Nepal's 10th Prime Minister in a decade, and its fourth since its Constitution was promulgated in 2015. India had mounted strong opposition to the Constitution with demands that it be made more inclusive, especially *vis-à-vis* the Madhesis in the Terai area, sending ties with Kathmandu's ruling establishment on a downward spiral. Even as Nepal struggled to cope with rehabilitation work after the massive earthquake of 2015, many in Kathmandu held India responsible for the three-month-long "great blockade" of goods and fuel supplies that followed sustained protests by Madhesi groups. To that end, Mr. Deuba's visit was another opportunity, as were the visits of his predecessors K.P. Sharma Oli and Pushpa Kamal Dahal 'Prachanda', to repair the India-Nepal relationship. The joint statement at the end of the Delhi leg of his visit refers to the "deep, comprehensive and multi-faceted" ties between the neighbours as

it listed projects being developed in Nepal under lines of credit provided by India. These include $200 million for irrigation projects, $330 million for road development and $250 million for power infrastructure in Nepal. India made the obligatory appeal to Kathmandu "to take all sections of society on board" while implementing its Constitution, but the tenor was notably softer this time. No mention was made of a key amendment to the Constitution to accommodate Madhesi demands that had been defeated just last Monday.Yet, it would be a mistake to presume that ties can so easily return to their pre-2015 strength, as the ground has shifted in too many ways since then. To begin with, memories of the blockade still rankle in Nepal. And while South Block and Singha Durbar have been keen to move ahead with trade linkages and complete the integrated check-posts at Raxaul-Birgunj and Jogbani-Biratnagar, the land-locked country has actively sought to break its dependence on India for fuel and connectivity. Since 2015, Nepal and China have cooperated on infrastructure plans, including a big hydroelectric project and a rail link to Tibet. Nepal is also part of China's Belt and Road Initiative. India is struggling to leverage the historical closeness with Nepal, the open border the two share and the special status Nepalis working in India have enjoyed. The India-China stand-off in Doklam will add to the awkwardness in the trilateral relationship. Mr. Deuba's visit will need a sustained follow-up.

---

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

***Date: 28-08-17***

# No silver bullet

***Mergers of state-owned banks are not the whole solution. Balance-sheets must be strengthened, governance improved.***

The government has announced that a ministerial panel headed by the finance minister will oversee mergers among state-owned banks. Finance Minister Arun Jaitley says that the aim is to create strong banks and that the merger proposals will have to come from the boards of these banks and decisions will be taken purely on commercial grounds. This comes at a time when bad loans as a ratio of total loans are already close to 10 per cent with indications that the ratio could worsen given the current economic conditions and the twin balance-sheet problem — of over-leveraged corporate balance-sheets and banks weighed down by bad loans. That's why the so-called Alternative Mechanism to oversee mergers of PSU banks could be seen as an attempt to skirt the challenge of infusing capital for banks which the government controls or divesting some of these weak banks.Over the last two decades, successive governments have indicated the policy option of consolidating Indian banks to ensure a better functioning financial sector. But that goal cannot be achieved by forcing a lender with a strong balance-sheet and a country-wide franchise or branch network to merge with a weak bank when the balance-sheets of most of the 21 state-run banks look stretched.The RBI's latest Financial Stability Report shows that the gross bad loan ratio of PSU banks could be as high as 14.2 per cent by March 2018 if there is no economic rebound. The credit rating agency, Moody's, reckons that the government which has budgeted Rs 10,000 crore this fiscal for capitalising banks will have to set aside close to Rs 95,000 crore for 11 state-run banks over the next two years.

The global experience of such mergers in the financial sector has shown that they are bound to fail if they don't meet the test of efficiency, synergy and cultural fit. It may be early to judge but the latest results show a deterioration in earnings of India's largest bank, State Bank of India, after the merger of its associate banks with the parent. Given the context, it is debatable whether this planned consolidation will lead to rationalisation, both at the branch level and in terms of staff, and a more efficient banking system.If the motive is only to shrink the universe of banks which the government controls, it will still not address the core issue of governance that underlies some of the problems faced by these banks. For, that is tied in to the ownership of banks by the government. Pursuing the mergers of these banks without strengthening their balance-sheets and raising governance standards poses the risk of compounding the problems being faced by these lenders.